

(४)

जिन-बैन सुनत मोरी भूल भगी ॥टेक॥
कर्मस्वभाव भाव चेतन को, भिन्न पिछानन सुमति जगी ॥१॥
निज अनुभूति सहज ज्ञायकता, सो चिर रुष-तुष-मैल पगी ॥२॥
स्याद्वाद धुनि निर्मल जलतैं, विमल भई समभाव लगी ॥३॥
संशय-मोह-भरमता विघटी, प्रकटी आतम सोंज सगी ॥४॥
'दौल' अपूरव मंगल पायो, शिवसुख लेन होंस उमगी ॥५॥

(५)

जिनवाणी माता दर्शन की बलिहारियाँ ॥टेक॥
प्रथम देव अरहन्त मनाऊँ, गणधरजी को ध्याऊँ।
कुन्दकुन्द आचार्य हमारे, तिनको शीश नवाऊँ ॥१॥
योनि लाख चौरासी माहीं, घोर महादुःख पायो।
ऐसी महिमा सुनकर माता, शरण तुम्हारी आयो ॥२॥
जानै थाँको शरणो लीनों, अष्ट कर्म क्षय कीनो।
जनम-मरण मिटा के माता, मोक्ष महापद दीनो ॥३॥
ठाड़े श्रावक अरज करत हैं, हे जिनवाणी माता।
द्वादशांग चौदह पूरव का, कर दो हमको ज्ञाता ॥४॥

(६)

महिमा है, अगम जिनागम की ॥टेक॥
जाहि सुनत जड़ भिन्न पिछानी, हम चिन्मूर्ति आतम की ॥१॥
रागादिक दुःख कारन जानैं, त्याग बुद्धि दीनी भ्रम की ॥२॥
ज्ञान-ज्योति जागी उर अन्तर, रुचि बाढ़ी पुनि शम-दम की ॥३॥
कर्मबंध की भई निरजरा, कारण परमपरा क्रम की ॥४॥
'भागचन्द' शिव-लालच लाग्यो, पहुँच नहीं है जहाँ जम की ॥५॥

(७)

चरणों में आ पड़ा हूँ, हे द्वादशांग वाणी।
मस्तक झुका रहा हूँ, हे द्वादशांग वाणी ॥टेक॥